

---

## इकाई 5 प्रारंभिक आधुनिक समाज में पर्यावरणीय मुद्दे\*

---

### इकाई की रूपरेखा

- 5.0 उद्देश्य
- 5.1 प्रस्तावना
- 5.2 प्रारंभिक आधुनिक काल में वन एवं वानिकी
- 5.3 वन्य जीवन: महाविनाश की ओर
- 5.4 संरक्षण की स्थानीय परंपराएँ
- 5.5 अकाल
- 5.6 रोग एवं महामारियाँ
- 5.7 जल संसाधन
- 5.8 सारांश
- 5.9 शब्दावली
- 5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
- 5.11 संदर्भ ग्रंथ

ignou  
THE PEOPLE'S  
UNIVERSITY

---

\* डॉ. दीपक के. नायर, सहायक प्राध्यापक एवं प्रमुख, इतिहास विभाग, आर. एन. ए. आर. महाविद्यालय, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, समस्तीपुर, बिहार।

---

## 5.0 उद्देश्य

---

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप निम्नलिखित के बारे में सीख एवं समझ सकेंगे:

- प्रारंभिक आधुनिक काल में भारतीय उपमहाद्वीप में कैसे मानव-पर्यावरण के परस्पर संपर्कों के कारण पर्यावरण में परिवर्तन हुए;
- किस प्रकार भारतीय शक्तियों द्वारा भारतीय वनों का परिनियमन किया गया और ब्रिटिश राज के अंतर्गत लाई गयी नीतियों ने उनमें क्या बदलाव किया;
- प्रारंभिक आधुनिक काल में कैसे भारतीय वन्य जीवन प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुआ;
- 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में पर्यावरण संरक्षण की कुछ स्थानीय परंपराएँ;
- 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में किस प्रकार से अकाल एवं बीमारियों ने लोगों को प्रभावित किया; एवं
- ब्रिटिश प्राधिकरणों द्वारा सिंचाई के लिए पुरानी नहरों का जीर्णोद्धार एवं नई जलसंरचनाओं का निर्माण।

---

## 5.1 प्रस्तावना

---

इस इकाई में हम प्रारंभिक आधुनिक काल के पर्यावरण का संक्षिप्त इतिहास प्रस्तुत करेंगे। यह इकाई लगभग एक शताब्दी एवं एक अर्धशताब्दी के काल पर प्रकाश डालती है जिसकी परिधि 1700–1858 है। भारतीय उपमहाद्वीप में इस काल में नाटकीय राजनीतिक उथल-पुथल हो रही थी। 1526 में स्थापित

शक्तिशाली मुगल साम्राज्य अब इसके अंतिम शक्तिशाली सम्राट औरंगज़ेब की 1707 में मृत्यु के बाद पतन की ओर अग्रसर हो चुका था; हालांकि परवर्ती मुगल शासक किसी तरह 1857 तक गद्दी पर बने रहे। मुगल साम्राज्य का विघटन एवं विखण्डन तीव्र गति से हुआ और अनक नई शक्तियाँ उभरी जैसे बंगाल, अवध, हैदराबाद एवं अन्य क्षेत्रीय शक्तियाँ जैसे मराठे इत्यादि। हालांकि असली प्रतिस्पर्धी जिसने मुगल साम्राज्य को आखिरी धक्का दिया वह थी ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी जो एक व्यापारिक निगम के तौर पर आयी थी लेकिन शीघ्र ही वह अपनी राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति में लग गई और स्वयं को भारतीय उपमहाद्वीप में सर्वोच्च शक्ति के रूप में स्थापित किया। इस काल के पर्यावरण का इतिहास बहुत हद तक इन राजनीतिक शक्तियों के उत्थान से संबंधित है। अगले भागों में हम 18वीं शताब्दी से 19वीं शताब्दी के मध्य तक, जब ईस्ट इंडिया कंपनी का भारतीय साम्राज्य 1858 में ब्रिटिश ताज के अंतर्गत लाया गया, पर्यावरण के परिप्रेक्ष्य में विविध घटनाक्रमों पर दृष्टि डालने का प्रयास करेंगे।

---

## 5.2 प्रारंभिक आधुनिक काल में वन एवं वानिकी

---

इतिहास में वन एवं वन्य उत्पाद बहुमूल्य संसाधनों के रूप में विविध समुदायों के लिए सदैव महत्वपूर्ण रहे हैं। अतः, सभ्यताओं के संपूर्ण इतिहास में राज्य इन संसाधनों पर विभिन्न क्षमताओं में दावा करते रहे हैं जो राजस्व में वृद्धि करने के लिए कुछ चुने हुए उत्पादों या फिर पेड़-पौधों की कुछ किस्मों तक सीमित थीं। इन्होंने वनों की रक्षा कर शिकार स्थलों को भी अक्षुण्ण बनाए रखा। ऐसा सुझाया जाता है कि भारत के वन क्षेत्र अतीत में अपने संसाधनों के

दोहन के संबंध में महत्वपूर्ण बदलावों से गुज़रे हैं। मुगल काल में शासकों एवं भूस्वामियों या ज़मींदारों ने वन्य क्षेत्र का सीमित रूप से परिनियमन किया और राजस्व नीतियों ने जंगलों के क्षेत्र में कृषि के विस्तार या संकुचन में एक निर्णायक भूमिका निभाई। कभी-कभी शासकों ने उस धन पर भी अपना दावा किया जो कुछ लाभप्रद वन्य उत्पादों के व्यापार से अर्जित किया जाता था। उदारहण के लिए, टीपू सुल्तान ने चंदन के पेड़ों पर अपना हक जताया था। हालांकि ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के आगमन के बाद 18वीं शताब्दी के अंतिम दशकों से वनों के वाणिज्यिक दोहन की प्रक्रिया काफ़ी उग्र हो गई।

राजनीतिक शक्तियों के आपसी संघर्षों के दौरान उनक सैनिक अभियान और वनों की कटाई संबंधित रहे। मूल्यवान संसाधनों के अतिरिक्त, वन शत्रु शक्तियों को एवं कभी-कभी असामाजिक तत्वों जैसे डाकू-लुटेरों को भी एक सुरक्षित शरण प्रदान करते थे। इसलिए युद्धों के दौरान शत्रुओं को हराने के लिए वनों को नष्ट करना रणनीति का एक हिस्सा बन गया। मराठा सेना युद्धों के दौरान वनों में आग लगा देती थी ताकि शत्रु सेना लकड़ियों से सुरक्षात्मक नुकीले बाड़ों का निर्माण न कर सके। टीपू सुल्तान के क्रूर अभियान के दौरान मार्ग के आस-पास के पेड़ों और झाड़ियों को काटा और जला दिया गया। सिखों ने भी अपने सैन्य अभियानों के दौरान आंतरिक क्षेत्रों से वनों का सफाया कर दिया था।

ब्रिटेन एक द्वीपीय देश होने के कारण कई शताब्दियों से एक समुद्री शक्ति रहा था और 17वीं-18वीं शताब्दी में सर्वोच्च नौसैनिक शक्ति बन गया था। जैसे-जैसे उपनिवेशों के लिए यूरोपीय ताकतों में होड़ मची, अपने प्रतिस्पर्धियों

को पीछे छोड़ने और उपनिवेशों का बड़ा हिस्सा प्राप्त करने के लिए नौसेना पर ब्रिटिश निर्भरता और भी अधिक बढ़ गई। 18वीं शताब्दी के मध्य तक जहाजों के निर्माण के लिए ब्रिटेन की मांग ब्रिटेन में ही स्थित अनेक वृक्ष के वनों से पूरी हो जाती थी परंतु 1760 तक यह दुर्लभ होने लगा था। इससे दक्षिण एशिया को एक नया संदर्भ मिला और ब्रिटेन ने अपनी लकड़ी की मांग भारतीय वनों से, विशेषकर सागौन से, पूरी करने की आशा की। लकड़ी की खोज और भी अधिक तीव्र हो गई जब 18वीं शताब्दी के अंत एवं 19वीं शताब्दी के आरंभ में क्रांतिकारी फ्रांस एवं नेपोलियन के चरणों के दौरान ब्रिटेन के विरुद्ध नेपोलियन की नाकाबंदी के फलस्वरूप बाल्टिक क्षेत्र से जहाज निर्माण के लिए लकड़ी की आपूर्ति बाधित हो गई थी। इस आरंभिक काल में ईस्ट इंडिया कंपनी ने पूर्वी तट पर स्थित रजमुंदरी के समीप उत्तरी सरकारों के सागौन के वनों एवं पश्चिमी तट पर स्थित वनों का भी दोहन किया। भारतीय वनों में ब्रिटेन की इस आरंभिक रुचि को लूट कहा गया है क्योंकि ब्रिटेन मात्र ज़्यादा से ज़्यादा लकड़ी प्राप्त करना चाहता था जो उसे असीमित प्रतीत होता था।

1780 के बाद भारतीय सागौन का उपयोग कर कलकत्ता के गोदी बाड़े (Dockyard) में जहाज बनाए गए। 19वीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में बम्बई में नियमित रूप से जहाजों का निर्माण किया गया। यह आशा की गई कि ब्रिटिश जहाजरानी के लिए भारतीय सागौन पर्याप्त लकड़ी प्रदान करेगा। ब्रिटिश जहाजरानी के लिए नियमित आपूर्ति बनाए रखने के लिए सागौन के कुछ वनों पर नियंत्रण स्थापित करने का निर्णय लिया गया। लकड़ी के व्यापार पर नियंत्रण, वनों के निजी उपयोग को नियंत्रित करने के पहले कदम के रूप में

देखा गया। यह पहले मालाबार के क्षेत्र में प्रयोग में लाया गया जिसे 1792 में जीत लिया गया था और यहाँ तक कि बर्मा में तेनास्सरिम में भी इसे लागू किया गया जिस पर 1826 में कब्जा कर लिया गया था। 1806 में मालाबार में वनों के एक संरक्षक की नियुक्ति की गई थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि वानिकी का आरंभ लकड़ी की नियमित आपूर्ति की आकांक्षा में आधारित था।

इस काल के दौरान वनस्पति उद्यान (Botanical Garden) की संकल्पना भी भारत में आरंभ की गई जिसमें पौधों की सैकड़ों किस्मों का प्रयोग के तौर पर प्रतिरोपण कर उन्हें विकसित किया गया। ईस्ट इंडिया कंपनी के जेम्स एंडरसन ने फोर्ट सेंट जॉर्ज के पास एक वनस्पति उद्यान विकसित किया। स्काट सर्जन विलियम रॉक्सबर्ग (1751–1815), जो पहले मद्रास के समीप समालकोट्टा में नियुक्त थे, ने भी मद्रास प्रेसीडेन्सी के वनस्पति उद्यान के निर्माण का अधीक्षण किया। 1788 में रॉबर्ट किड ने बंगाल में कलकत्ता के निकट वनस्पति उद्यान स्थापित किया जिसे उसने 'जलवायु-अनुकूल उद्यान' (Garden of Acclimatization) कहा। इसकी शुरुआत कंपनी की नौसेना के जहाजों के निर्माण के लिए सागौन की लकड़ी की आपूर्ति करने के संकल्पित विचार से हुई। बाद में विलियम रॉक्सबर्ग कलकत्ता के वनस्पति उद्यान के निदेशक बने। वहाँ उन्होंने 800 प्रजातियों के पेड़ एवं 2200 किस्मों के पौधे लगाकर वृद्धि की।

जल्दी ही विविध कारणों से मांग में वृद्धि के कारण उन क्षेत्रों में भी पेड़ों को वाणिज्यिक रूप से काटा जाने लगा जहाँ पर ब्रिटिश शासन विद्यमान नहीं था। उत्तर-पश्चिम एवं पंजाब में ब्रिटेन के क्षेत्रीय विस्तार के कारण भी वनों क

कटाव में वृद्धि हुई। नव-स्थापित ब्रिटिश छावनियों में ईंधन के तौर पर तथा निर्माण के लिए लकड़ी की आवश्यकता हुई जिससे वृक्षावरण में कभी आई। परिणामस्वरूप, 1850 के दशक तक लकड़ी की तीव्र कमी महसूस होने लगी। अब पंजाब में प्रशासन ने देवदार (Cednis Deodara) के वनों के उपयोग को सीमित कर परिनियमन करने का निर्णय लिया। अवैध रूप से पेड़ों की कटाई, खेती, पशु चराने और आग जलाने के मामलों को रोकने के लिए वन प्रहरियों की नियुक्ति की गई।

व्यापारिक वस्तुओं को पेटियों में भरने और अंतर्राष्ट्रीय गंतव्यों तक पहुँचाने के लिए भी लकड़ी की आवश्यकता थी। इन वस्तुओं में से एक अफीम का अवैध घोषित होने से पहले 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में खुला व्यापार होता था। कंपनी के व्यापार पर एकाधिकार की समाप्ति के बाद भी अफीम चीन तक निजी व्यापारियों द्वारा पहुँचती थी। अफीम व्यापार में निर्यात के लिए लाखों लकड़ी की पेटियों की आवश्यकता थी।

आधुनिक तकनीकों के विकास का प्रभाव भी उपनिवेशों में देखा गया जो औपनिवेशिक शोषण के नए यंत्र बने। 19वीं शताब्दी के मध्य में भारत में रेल के आगमन से भारतीय वनों पर दबाव काफी बढ़ाया। पहली रेल पटरी बम्बई से थाणे का निर्माण 1853 में किया गया था जो एक मील लंबा ब्रॉड गेज़ (Broad Guage) पथ था। इसके निर्माण में लगभग 2000 शहतीरों (sleepers) की आवश्यकता हुई। इस बात की कल्पना की जा सकती है कि बाद के वर्षों में भारत में रेलवे के विस्तार में कितने शहतीरों की आवश्यकता पड़ी होगी। शहतीरों के निर्माण में देवदार, साल (Shorea robusta) और सागौन की

लकड़ी इस्तेमाल की गई थी। रेलवे की भारी मांग के अतिरिक्त लकड़ी की ज़रूरत ईंधन के रूप में भी थी जिन क्षेत्रों में कोयला उपलब्ध नहीं था। लकड़ी की आपूर्ति के संकट के कारण वनों में प्रवेश के संबंध में परिनियमन किया गया और इसके संरक्षण के प्रयास किए गए।

1830 के बाद से भारत, ब्रिटेन एवं विश्व के अन्य भागों में विज्ञान की ओर झुकाव वाले अधिकारियों की संख्या में वृद्धि हुई। शोध प्रकाशनों का ध्यान मानवीय हस्तक्षेपों के कारण होती पर्यावरण की क्षति पर बढ़ता गया। इनमें शामिल थे – वनों का कटाव, नियमित अकाल, जल एवं वायु प्रदूषण से होने वाली महामारियाँ और महत्वपूर्ण रूप से कंपनी की नीतियों को इनसे संबद्ध किया गया जो प्रतिकूल प्रभाव उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी थीं। भारत के प्राकृतिक एवं मानवीय संसाधनों के दोहन के लिए विवेकपूर्ण उपायों में से एक विभिन्न अध्यक्षीय मंडलों/खंडों (presidencies) में संरक्षकों की नियुक्ति करना था। स्कॉट सर्जन रालेकजैण्डर गिब्सन 1847 में बंबई प्रेसिडेंसी के प्रथम वनों के संरक्षक नियुक्त हुए। इसी प्रकार 1856 में मद्रास प्रेसिडेंसी में डॉ. ह्यू क्लेगहॉर्न वनों के संरक्षक बने। उन्होंने वानिकी में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए अपने संरक्षण प्रयासों में लकड़ी से संरक्षण से आगे बढ़कर वनों के कटाव और सूखे के बीच संबंध पर ध्यान आकर्षित किया। उन्होंने सूखे को रोकने के लिए वनों की रक्षा करने, कृषि की समृद्धि सुनिश्चित करने के लिए जल आपूर्ति बनाए रखने और नदियों एवं बंदरगाहों में गाद जमने की समस्या पर जोर दिया। इन कारणों से वनों पर नियंत्रण को लेकर सरकारी दखल और भी बढ़ गया और कुछ क्षेत्रों में झूम कृषि पर प्रतिबंध लगा दिया गया।

वनों के परिनियमन से उनमें एवं आस-पास रहने वाले जनजातीय समूह प्रभावित हुए जो वनों को एक सार्वजनिक संपत्ति एवं संसाधन के रूप में देखते थे। वे अपनी जीविका पार्जन करने के लिए वन उत्पादों का संग्रह करते थे और कृषि की परंपरागत पद्धतियों का इस्तेमाल या झूम कृषि करते थे। तमिल में इसे 'कोथुकडु' (Kothukadu) और कूर्ग क्षेत्र में 'कुमरी' के नाम से जाना जाता था। ब्रिटिश सरकार ने इस कृषि को सीमित करने की नीति अपनाई। यह तर्क दिया गया है कि वनों पर राज्य का नियंत्रण अधिक राजस्व उत्पन्न करने एवं वनों के वाणिज्यीकरण को सुगम बनाने के लिए किया गया था। जहाज के निर्माण के लिए लकड़ी की प्राप्ति, चंदन की प्राप्ति, चाय और कॉफी के बागानों की स्थापना, लौह उद्योगों के लिए वन संसाधनों का दोहन और रेलवे के आरंभ ने वन उत्पादों के उपयोग को लेकर जनजातीय समूहों पर कड़े प्रतिबंध लगा दिए। उनके जीवन में भारी परिवर्तन आ गया। ज्यादातर जनजातीय लोग कृषक मजदूर बन गए या फिर कृषि से संबंधित गतिविधियों में लग गए। उनके व्यावसायिक स्तर में गिरावट के कारण वे अपनी भूमि से दूर हो गए। इसी प्रकार, अन्य क्षेत्रों में कृषक समाज की सीमा पर रहने वाले समूहों को अनियंत्रित और अनुत्पादक होने के अतिरिक्त वनों के कटाव के लिए जिम्मेदार माना गया। उनके तरीकों को पारिस्थिकी के लिए विनाशकारी एवं बर्बाद करने वाला माना गया।

1855 में गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी के अनुबोधक (Memorandum) ने सभी वनों को अपने अंतर्गत लेने के कंपनी के अधिकार की और अधिक पुष्टि की और यहाँ तक कि इस बात पर जोर दिया कि वनों की व्यवस्था वैज्ञानिक

वानिकी' के द्वारा करना कंपनी का कर्तव्य है जो उस समय यूरोप में उभर रही थी। इसके लिए लॉर्ड डलहौजी ने जर्मन-ब्रिटिश डॉ. डीटरिश ब्रांडिस की नियुक्ति की जिन्होंने वनस्पति शास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की थी और जर्मन वैज्ञानिक वानिकी में प्रशिक्षण प्राप्त किया था। ब्रांडिस को विशेष सेवा पर कार्यकारी अधिकारी भी नियुक्त किया गया और उन्होंने वनों के संरक्षण के लिए परिनियमन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने 1864 में राष्ट्रीय वन विभाग की स्थापना करने और 1865 में प्रथम वन अधिनियम पारित करने में भी प्रमुख भूमिका निभाई।

17वीं शताब्दी के मध्य से ही कंपनी ने भारत का मानचित्र सर्वेक्षण करना आरंभ कर दिया था। प्रथम सर्वेक्षक जनरल मेजर जेम्स रेनेल ने बंगाल के विस्तृत मानचित्र तैयार किए। जल्दी ही अधिकांश शेष क्षेत्रों का मानचित्रिय सर्वेक्षण किया गया जिसमें वनों, पर्वतों, नदियों, मार्गों, कस्बों और बस्तियों की जानकारियाँ शामिल थीं। 1802 तक 'वृहत त्रिकोणमितीय सर्वेक्षण' (Great Trigonometrical Survey) आरंभ हो गया था जिसमें थियोडोलाइट (Theodolite) यंत्र का इस्तेमाल करके अधिक विस्तृत और सटीक मानचित्र बनाए गए। 1857 तक कंपनी ने उपमहाद्वीप के आधे हिस्से का सर्वेक्षण कर लिया था। इस सूचना और भारत के प्राकृतिक संसाधनों की खोज के संबंध में कंपनी का एकाधिकार था जो उसने भारत के प्राकृतिक संसाधनों, विशेषकर भूमि और वनों के वाणिज्यिक दोहन में उपयोग किया।

कंपनी की अपनी नीतियों के द्वारा भारतीयों के जीवन में दखल-अदाजी के परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी के मध्य में एक उग्र एवं हिंसक प्रतिक्रिया हुई।

बिहार की वनवासी संथाल जनजाति 1855 में कंपनी के खिलाफ विद्रोह में उठ खड़ी हुई। कंपनी ने पहले उन्हें उनके मूल निवास से विस्थापित कर राजमहल पहाड़ियों में बसाया था। चूंकि भू-राजस्व कंपनी के लिए आय का प्रमुख स्रोत था, उसमें वृद्धि करने के लिए वह अभी तक कृषि नहीं लाए गए क्षेत्रों में कृषि का विस्तार करना चाहती थी। पहले कंपनी ने स्थानीय जनजाति के लिए उपयोग में पहाड़ियों को कृषकों के रूप में परिवर्तित करने का प्रयास किया लेकिन असफल रहे। पहाड़िया जनजाति ने वनों को काटने एवं हल छूने से इंकार कर दिया। इसलिए कंपनी को अब संथाल जनजाति वहाँ बसाने के लिए आदर्श प्रतीत हुई। उन्हें राजमहल क्षेत्र की छोटी पहाड़ियों में लाया गया और भूमि देकर बसाया गया। भूमि अनुदान की शर्तों में एक शर्त यह भी थी कि पहले दस सालों में क्षेत्र का कम से कम 1/10 हिस्सा साफ किया जाएगा और वहां कृषि की जाएगी। परिणामस्वरूप, वे वहाँ वनों को काटकर बस गए और कृषि करना आरंभ किया। पहाड़िया जनजाति ने शुरुआत में प्रतिरोध किया लेकिन उन्हें पहाड़ों के अंदरूनी इलाकों की तरफ जाने पर विवश किया गया। संथालों की कृषक बस्तियों में तेजी से वृद्धि हुई। अब वे कई तरह की व्यापारिक फसलें उगाते थे, व्यापार करते और व्यापारियों और साहूकारों से व्यवहार करते थे। कुटिल साहूकार बंगाल के कृषकों के मध्य बही खातों में धोखाघड़ी के उपायों का प्रयोग करने के लिए ऋण पर बहुत अधिक ब्याज लेने के लिए बदनाम थे। सरकार भूमि पर अत्यधिक कर लगाती थी जिसे समय पर न चुका पाने की स्थिति में उन्हें साहूकारों के पास जाना पड़ता था। दूसरे कृषकों की तरह ही संथाल भी साहूकारों के चंगुल में फंस गए और जल्दी ही अपनी भूमि खोने लगे। 1855 में उन्होंने ज़मींदारों और साहूकारों के खिलाफ

विद्रोह कर दिया जो 1856 तक चलता रहा और उन्हें अलग संथाल परगना के निर्माण के बाद ही शांत किया जा सका। इसी प्रकार भारतीय समाज के अनेक वर्ग – पदच्युत राजाओं, सैनिकों, अलग-थलग व्यापारियों से लेकर किसानों, पशुचारकों, वनवासियों ने ईस्ट इंडिया कंपनी की नीतियों से असंतुष्ट होकर उसे चुनौती देते हुए 1857 के महान विद्रोह में उठ खड़े हुए।

---

### 5.3 वन्य जीवन: महाविनाश की ओर

---

आधुनिक काल के पूर्व वन्य जीवन समृद्ध एवं विविधतापूर्ण था। हालांकि शासकों में एक क्रीड़ा के तौर पर शिकार लोकप्रिय था और वनवासी समुदाय भी अपने जीविका पार्जन के लिए अवश्य शिकार करते होंगे। लेकिन फिर भी, औरंगज़ेब तक शक्तिशाली मुगल शासकों ने जंगली जानवरों और पक्षियों के शिकार को सीमित कर रखा था। उन्होंने शेरों एवं बाघों के शिकार को एक राजकीय विशेषाधिकार बना दिया था। उनके पूर्ववर्ती उत्तराधिकारियों के अंतर्गत यह सुरक्षा प्रभावी नहीं रही। इन सबके बावजूद औपनिवेशिक दस्तावेजों में हम पाते हैं कि 19वीं शताब्दी के आरंभ में भी भारत का वन्य जीवन इतना समृद्ध था कि वह अफ्रीका के वन्य जीवन से मिलता-जुलता था।

वनों का अस्तित्व एवं वन्य जीवन दोनों एक दूसरे से अविभाज्य रूप से जुड़े हुए हैं। 1764 में बक्सर के युद्ध के बाद ईस्ट इंडिया कंपनी के पूर्व से पश्चिम की ओर अंदरूनी क्षेत्रों में विस्तार के क्रम में हम औपनिवेशिक दस्तावेजों से मौजूदा वनों और वन्य जीवन की झलक पाते हैं। कैप्टन टी. विलियमसन की किताब 'ओरिएण्टल फील्ड स्पोर्ट्स' (1807) में भारतीय वन्य जीवन का एक मनमोहक विवरण मिलता है जब शिकार-क्रीड़ा शुरू ही हुई थी और यह इस

बात की ओर इशारा करता है कि इस काल में वन्यजीवन भरपूर था। एक अंग्रेज महिला, जिसने 1837 में राजमहल की पहाड़ियों में एक बड़े शिकार का आयोजन किया था, वह इन वनों में भरपूर बाघों, गैंडों, जंगली भैंसों और जंगली कुतों के होने की बात कहती है।

मेजर जे. जी. इलियट अपनी किताब 'फील्ड स्पोर्ट्स इन इंडिया 1800-1947' में कहते हैं कि कलकत्ता से ब्रिटिश सीमा जमना (यमुना) तक बस्तियों और खेतों के आस-पास घने वन अवस्थित थे जहाँ बाघ, हिरण, मोर, बत्तख, तीतर, बटेर और चाहा पक्षी (Snipe) बड़ी संख्या में घूमा करते थे। गंगा के सुंदरबन दाहाना क्षेत्र में बाघ, हिरण, कुते, गैंडे और भैंसे बड़ी मात्रा में थे। नेपाली तराई के वन संयुक्त प्राप्त से लेकर हिमालय की निचली पहाड़ियों से नेपाल की सीमा के साथ-साथ 600 मील तक विस्तृत थे। इसके दक्षिण में विशाल दलदली क्षेत्र एवं कई झीलें थीं जहा पर विविध वन्य प्राणी जैसे हाथी, बाघ, तेंदुए, साँमर, चीतल, कांकड़ हिरण और सुअर पाए जाते थे। सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि यह भारत में एक सींग वाले गैंडे का आखिरी शेष दौर था।

19वीं शताब्दी के आरंभ से ही ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारियों द्वारा 'शिकार-क्रीड़ा' आयोजित की जाने लगी थी जो शताब्दी के उत्तरार्ध में बढ़ी। पहला शिकार भारत में काफी पहले आयोजित किया गया था जब 'मद्रास हंटिंग सोसायटी' की स्थापना हुई थी। अंग्रेज अधिकारी इंग्लैंड के ग्राम्य क्षेत्रों में पैदा हुए और पले-बढ़े थे जहाँ शिकार-क्रीड़ा प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त बड़े शिकार ब्रिटिश उच्च वर्गों में लोकप्रिय थे और इसके लिए भारतीय वन्य जीवन में उन्हें भरपूर अवसर प्रदान किए। 19वीं शताब्दी में कई अंग्रेज

अधिकारियों ने महान शिकारियों के तौर पर ख्याति अर्जित की जैसे विलियमसन, शेक्सपीयर, बर्टन, सैण्डरसन, फोर्सिथ आदि। उन्होंने हर तरह के जंगली जानवरों का शिकार किया लेकिन सबसे ज़्यादा ध्यान बड़े शिकार जैसे बाघों, शेरों और हाथियों पर दिया जाता था। किसी प्रकार के जीवों का शिकार करने पर कोई सीमा का प्रतिबंध नहीं था। वास्तव में, 18वीं शताब्दी के अंत से ही अधिक राजस्व उत्पन्न करने के लिए कृषि का विस्तार ब्रिटिश नीति का हिस्सा था जिसके लिए वनों की कटाई एवं जंगली जानवरों से क्षेत्र को मुक्त करने की आवश्यकता थी। इसलिए लोगों को वास्तव में जंगली जानवरों का शिकार करने के लिए बढ़ावा दिया जाता था। तीव्र एवं सुरक्षित आवागमन एवं संचार के लिए बंगाल से उत्तर पश्चिम तक विस्तृत ग्रैंड ट्रंक सड़क का निर्माण किया गया था। इसे चौड़ा करने के लिए निकटवर्ती वनों को काटने के कारण भी इस क्षेत्र में जंगली जानवरों की संख्या में कमी आई।

शिकार एक क्रीड़ा मात्र नहीं था। यह अति-पौरुषत्व और प्रतिष्ठा-प्रतीक का प्रतिरूप भी बन गया था। ऊँचे मदानों से शिकार करने की बजाय जमीन पर पैदल किए गए साहसिक शिकार अभियानों की अधिक पौरुषत्व के आधार पर ज़्यादा सराहना की जाती थी। शिकार किए गए जानवरों का आकार भी शिकारियों की प्रतिष्ठा में वृद्धि करता था। यह तर्क दिया गया है कि बड़े शिकार एक संभ्रांत पुरुष की हैसियत प्राप्त करने का एक सरल उपाय बन गया था। बड़े शिकारों की अधिक संख्या शिकारियों की हैसियत में वृद्धि करते थे जो अपनी उपलब्धियों पर गर्व करते थे। परिणामस्वरूप, सभी प्रकार के जंगली जानवरों और पक्षियों का विनाश हुआ। एक अंग्रेज अधिकारी के बारे में

कहा जाता है कि उसने अकेले ही 300 शेरों का शिकार किया। रजवाड़ों-रियासतों के शासक भी बड़े शिकार आयोजित करते थे और प्रायः अंग्रेज अधिकारियों को उनके अभियान में शामिल होने के लिए न्योता देते थे। यह आंकलन किया गया कि ब्रिटिश राज के दौरान 80,000 बाघों, 1,50,000 तेंदुओं, 2,00,000 भेड़ियों को मार डाला गया। यह आंकलन 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में वन्य जीवन के विध्वंस के पैमाने की एक झलक प्रस्तुत करता है।

19वीं शताब्दी के दौरान शिकार के कारण कुछ ऐसे अध्ययन भी हुए जो वन्य जीवन को समझने, वन्य प्राणियों के जीवन, आदतों और आवास से संबंधित विशेषताओं को दर्ज करने पर केंद्रित थे। शिकार में 19वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वृद्धि ही हुई जिसने वन्य जीवन का एक वृहद सीमा तक खत्म कर दिया। फिर भी, पारिस्थितिकीय नुकसान के अहसास ने गंभीर चिंताएँ उत्पन्न की और 19वीं शताब्दी के आखिरी चतुर्थांश में वन्य जीवन की रक्षा के लिए कुछ सुरक्षा कानून बनाए गए।

---

#### 5.4 संरक्षण की स्थानीय परंपराएँ

---

लकड़ी का इस्तेमाल बड़े पैमाने पर घरों के निर्माण के लिए, उपस्कर (furniture), कृषि के औजार, संगीत वाद्ययंत्र, अनेक हस्तशिल्प सामग्रियों के निर्माण और ऊर्जा के आधारभूत स्रोत के रूप में किया जाता था जिससे इसका महत्व काफी बढ़ गया था। जैसे-जैसे सभ्यता का विकास हुआ इस अति महत्वपूर्ण प्राकृतिक संसाधन के संरक्षण की आवश्यकता और भी स्पष्ट हुई। कुछ समुदायों को संसाधनों के संरक्षण एवं उनका विवेकपूर्ण इस्तेमाल करने की

आवश्यकता का अहसास हुआ। इस काल में संरक्षण के कुछ प्रयास राजस्थान के परिप्रेक्ष्य में दिखाई देते हैं।

राजस्थान का बिश्नोई समुदाय पर्यावरण के प्रति अपने रुझान के लिए जाना जाता है। संस्थापक जम्होजी (1451–1536) की शिक्षाओं से उभरे इस समुदाय ने राजस्थान में, विशेषकर बीकानेर और जोधपुर के शुष्क क्षेत्रों में काफी लोकप्रियता हासिल की। 18वीं शताब्दी तक यह समुदाय इतना प्रभावी हो गया था कि शासकों को जम्होजी के उपदेशों को सम्मान देने के लिए बाध्य होना पड़ा। हमें जोधपुर और बीकानेर के राजाओं द्वारा आधिकारिक आदेशों ('परवाना') के उदारहण मिलते हैं जिनमें हरे वृक्षों को काटने पर प्रतिबंध लगाया गया है। खेजरी वृक्ष का महत्व, जो 17वीं शताब्दी में ध्वज पर भी प्रदर्शित करने से दिखाई देता है, बाद की शताब्दियों में भी जारी रहा। क्योंकि इस पेड़ के काटने पर प्रतिबंध लगा हुआ था।

क्योंकि वन बहुत कम थे, मध्य और पश्चिमी राजस्थान में पेड़-पौधे घने नहीं थे इसलिए बचे हुए वृक्षों को बचाना अति आवश्यक हो गया। इसकी अत्यावश्यकता इस सीमा तक महसूस की गई कि पेड़ काटने पर दण्डित करना आम हो गया। ऐसे उदाहरण हमें 17वीं और 18वीं शताब्दी में आमेर में मिलते हैं। यह सुझाया गया है कि राज्य पेड़-पौधों के संबंध में नियंत्रण का अधिकार रखता था और अनधिकृत रूप से पेड़ काटने पर सजा दिया करता था।

कुछ विशेष प्रकार के वृक्षों ने उनकी विशेषताओं और उपयोगिता, धार्मिक एवं आनुष्ठानिक कारणों से महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। पीपल, बड़ या बरगद को

शुभ माना जाता है और जामुन में औषधीय गुण हैं और राजस्थान का प्रमुख वृक्ष बबूल आर्थिक और पारिस्थितिकीय रूप से मूल्यवान है। इसलिए इनकी कटाई करने पर दण्ड दिए जाते थे।

कई मामलों में राज्य चारे एवं घास के संसाधनों का नियंत्रण करता हुआ भी दिखाई देता है। उनकी सैन्य आवश्यकताओं के लिए चरागाह भूमियों को आरक्षित कर लिया जाता था ताकि सेना के आधार-घोड़ों, ऊँटों एवं हाथियों को पर्याप्त घास उपलब्ध कराई जा सके। राजा अनधिकृत रूप से घास की कटाई करने पर दण्डित कर सकता था। इसके अतिरिक्त आरक्षित चरागाह भूमि के अलावा राज्य बलपूर्वक ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित सामुदायिक और निजी चरागाह भूमिका उपयोग कर सकता था। इस तरह के कई उदाहरण विभिन्न ऐतिहासिक कालों के अभिलेखा, दस्तावेजों में मिलते हैं जिनमें लोग राज्य से सैनिकों को कूच के दौरान नियंत्रित करने की प्रार्थना करते थे ताकि लूट की घटनाओं और फसलों एवं अन्य संसाधनों को नष्ट होने से बचाया जा सके।

कुछ शासकों और भूमिपति समूहों ने शिकार क्षेत्र और उनके किलों की सामरिक सुरक्षा के लिए विशेष रूप से वनरोपण भी किया। इनमें सबसे प्रसिद्ध सिंध के तालपुर मीर थे जिन्होंने 1783 में वनरोपण आरंभ किया ताकि शिकारगाहों का अनुसरण किया जा सके। साधारणतः वृक्षों की कटाई नहीं की जाती थी और काटने के लिए अनुमति आवश्यक थी। जब अंग्रेजों ने 1843 में सिंध को जीत कर विलय कर लिया तब भी इनमें से कई वनाच्छादित शिकारगाह अस्तित्व में थे। अवध के ज़मींदारों ने भी अपने किलों के आसपास वृक्षावरण और झाड़ियों को संरक्षित रखा था ताकि उन्हें राजस्व वसूल करने

वाले अधिकारियों से बचने के लिए एक सुरक्षित शरणस्थली के रूप में इस्तेमाल कर सकें। इस बात को दर्ज किया गया है कि ये वन इतने सघन थे कि तोप के गोले भी इन्हें भेद नहीं पाते थे।

### बोध प्रश्न 1

- 1) प्रारंभिक आधुनिक काल में वनावरण की तीव्र कमी और वन्य जीवन के विनाश के लिए उत्तरदायी कारकों का विवेचन करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

- 2) 18वीं एवं 19वीं शताब्दी के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप में स्थानीय संरक्षण की परंपराओं के कुछ उदाहरण प्रस्तुत करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

---

## 5.5 अकाल

---

उपमहाद्वीप के इतिहास में अकाल नियमित रूप से पड़ते रहे हैं। उन्हें 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में अधिक व्यवस्थित रूप से आलेखित किया गया है। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रशासन के अंतर्गत 1765 से 1858 के बीच केवल बंगाल में ही करीब एक दर्जन अकाल और चार भयंकर सूखे पड़े। विद्वानों द्वारा यह तर्क दिया जाता है कि अकाल प्राकृतिक घटनाएँ नहीं हैं बल्कि फसल के न होने और सूखे पड़ने की परिस्थितियाँ प्रशासनिक प्राधिकरण के कुप्रशासन और कुप्रबंधन के कारण भयंकर रूप धारण कर लेती हैं।

ईस्ट इंडिया कंपनी के अंतर्गत सबसे पहला अकाल 1769–70 में पड़ा। इस 18वीं शताब्दी की सबसे बड़ी त्रासदी माना गया है। इस अकाल ने पश्चिम और उत्तरी बंगाल, बिहार और ओडिशा के कुछ भागों को तबाह कर दिया। इसके पहले 1768 में बंगाल और बिहार में मॉनसून के असफल होने के कारण आंशिक रूप से फसल नष्ट थी। जनसंख्या की एक तिहाई का अकाल और भुखमरी के कारण नाश हो गया। सरकार की ओर से कर-वसूली में कोई राहत नहीं दी गई, बल्कि उसे ज़्यादा चिंता राजस्व-वसूली की थी। यह इस बात से पता चलता है कि अकाल वर्ष 1770–71 में ज़्यादा राजस्व वसूला गया था। यहाँ तक कि कुछ औपनिवेशिक दस्तावेजों में इस स्थिति के संबंध में चिंताएं व्यक्त की गई हैं।

1781–1782 में मद्रास क्षेत्र में सूखा पड़ा और 1784 में पूरे उत्तरी भारत में सूखा पड़ा। 1783–84 में चालीसा अकाल ने पश्चिमी अवध, पूर्वी पंजाब क्षेत्र, दिल्ली, रजपूताणा और कश्मीर को अपनी चपेट में ले लिया। करोब 1 करोड़

10 लाख लोगों की मृत्यु हो गई और कई बड़े क्षेत्रों में आबादी काफी कम हो गई। 1789-92 में दोजी बारा नामक विस्तृत अकाल पश्चिमी भारत एवं दक्कन के क्षेत्रों में पड़ा। इसमें मद्रास प्रेसिडेंसी, गुजरात, दक्कन, हैदराबाद, दक्षिण मराठा क्षेत्र और मारवाड शामिल थे। फिर करीब 1 करोड़ 10 लाख लोगों की मृत्यु हो गई और ऐसे भयानक वर्णन मिलते हैं कि इतनी बड़ी संख्या में मौतें हुईं कि मृत लोगों को दफनाया और जलाया भी नहीं जा सका। मद्रास में कंपनी ने कुछ राहत कार्य किया।

1803 में आधुनिक उत्तर प्रदेश के क्षेत्र में अकाल पड़ा। 1837 में दक्षिण भारत के गुंटूर क्षेत्र में पड़े विनाशकारी अकाल में 5 लाख लोगों में से 2 लाख लोगों की जान चली गई। सरकार ने कुछ सार्वजनिक कार्य किए लेकिन असहाय लोगों के बीच अधिकांश राहत कार्य धार्मिक परोपकारी संस्थाओं द्वारा किया गया। सूखे एवं फसलों के नष्ट होने से 1837-38 में आगरा का अकाल पड़ा जो मध्य दोआब, आगरा क्षेत्र, दिल्ली और हिसार तक फैला था। इसके कारण 80 लाख मौतें हुईं।

इस काल में अकालों के आधारभूत कारणों की समीक्षा करते हुए विनीता दामोदरन यह तर्क देती हैं कि ईस्ट इंडिया कंपनी के द्वारा किए गए हस्तक्षेपों और 18वीं एवं 19वीं शताब्दी में आधुनिकता एवं विकास ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। कंपनी राज के अंतर्गत करों में वृद्धि की गई, स्थायी बसावट को बढ़ावा दिया गया, रेल आगमन और निजी पूंजी परंपरागत अर्थव्यवस्थाओं के विनाश का कारण बने। कंपनी ने संपत्ति की नई व्यवस्थाएं शुरू कीं, वन भूमि को कृषि भूमि में बदलने की नीति अपनाई और वनों को अव्यवस्था एवं

लुटेरी जनजातियों की शरण स्थली के रूप में देखा। कंपनी के दीवानी ग्रहण करने के बाद भू-राजस्व बढ़ा दिया गया। कर वसूली अत्यधिक कठोरता से की जाती थी जिससे लोगों की काफी दुर्गति होती थी। यह स्थिति और भी शोचनीय हो गई अब ईस्ट इंडिया कंपनी के निर्देशकों ने माँग की कि अधिकारियों को इंग्लैंड से धन मंगाए बिना ही निवेशों में वृद्धि करनी होगी। उन्हें भारत में ही पर्याप्त राजस्व उत्पन्न करना होगा और उसी से इंग्लैंड को नियति करने के लिए उत्पाद खरीदने होंगे। अतः, अधिकारियों को कर संग्रहण में वृद्धि करने एवं उसे ओर भी अधिक कठोरता से वसूलने के लिए बाध्य होना पड़ा।

हाल के कुछ अध्ययनों ने इन नियमित रूप से पड़ने वाले अकालों को वैश्विक स्तर पर होने वाले जलवायु परिवर्तनों से संबद्ध किया है। इन अध्ययनों में एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका ईस्ट इंडिया कंपनी के सर्जन विलियम रॉक्सबर्ग में निभाई है। उन्होंने मद्रास प्रेसिडेंसी 1776-93 के मध्य विस्तृत मौसम संबंधी आँकड़ों का लेखा-जोखा रखा। उन्होंने व्यवस्थित रूप से दिन में तीन बार वायुदाब, तापमान और वर्षा के आँकड़ों को दर्ज करके कई वर्षों की सारणियाँ बनाई। इन आँकड़ों का प्रयोग उन्होंने मद्रास प्रेसिडेन्सी में मॉनसून की असफलता के साथ जोड़ने में किया। रिचर्ड ग्रोव ने अपने अध्ययन में 18वीं शताब्दी के अंत एवं 19वीं शताब्दी के आरंभ में वैश्विक स्तर पर बिगड़ती जलवायु परिस्थितियों के लिए अलनीनो धारा और दक्षिणी प्रदोलन (ENSO) घटनाओं के प्रभाव पर जोर दिया है। इन घटनाओं के प्रभाव से ऑस्ट्रेलिया के अर्ध शुष्क क्षेत्रों में, दक्षिणी एशिया, कैरिबियन और मध्य एवं दक्षिण अमेरिका में

सूखे पड़े। 19वीं शताब्दी के अंत में ऑस्ट्रेलिया सरकार के पर्यवेक्षकों सर चार्ल्स हॉड और एच. सी. रसेल आश्वस्त हो गए थे कि ऑस्ट्रेलिया और भारत में पड़ने वाले सूखे सामान्यतः एक ही समय में पड़ते थे। रसेल ने 1789–91 से 1884–86 तक ऑस्ट्रेलिया में पड़े सूखों की सूची दी है और भारत में पड़ने वाले सूखों के समय की समानता की तुलना थी। ऑस्ट्रेलिया में पड़ने वाले 22 सूखों में से भारत में 10 सूखे एक ही समय में पड़े। इस इकाई में शामिल अवधि के अंत तक अर्थात् 1858 तक सात ऐसे सूखे पड़े।

कंपनी राज के अंतर्गत राहत कार्य या अकाल को रोकने के लिए कोई प्रभावी योजना नहीं बनाई गई। लेकिन स्थानीय स्तर पर प्रशासन द्वारा विभिन्न योजनाएं अपनाई गईं जैसे अनाज का आरक्षित भण्डारण, जमाखोरी पर सजा देना और कुएँ खोदने के लिए ऋण देना इत्यादि। हम यह भी देखते हैं कि बंगाल में 1769–70 के अकाल के बाद कलकत्ता वनस्पति उद्यान में सर्जन रॉबर्ट किड ने अकाल-रोधी फसलों के विकास का प्रयास किया। इसी प्रकार विलियम रॉक्सबर्ग ने कलकत्ता आने से पहले मद्रास प्रेसिडेंसी में अकालों के दौरान लोगों को जीवित रखने के लिए खाद्य उत्पाद प्रदान करने वाले वृक्षों जैसे केले, कटहल, ब्रेडफ्रूट, ओपनटिया, नारियल, खोखो, खजूर और ताड़ इत्यादि के रोपण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

---

## 5.6 रोग एवं महामारियाँ

---

विस्तृत भारतीय उपमहाद्वीप में पर्यावरण विविधताओं से परिपूर्ण था जिसमें विश्व के सबसे ऊँचे पर्वतों से लेकर विशाल मैदान थे और विधुवतीय वनों से लेकर बंजर मरुस्थल थे। इस विविधता से भरे क्षेत्र में अपने विशेष रोग भी थे जैसे

प्लेग, कोलेरा, चेचक और मलेरिया जिनके विनाशकारी प्रभाव थे। ब्रिटिश औपनिवेशिक व्यवस्था पर इसका प्रभाव पड़ा और कंपनी के अधिकारी एवं सैनिक इन जानलेवा बीमारियों से पीड़ित हुए।

भारत में प्लेग फैलने की विविध घटनाओं की सूचना मिलती हैं। 1812 में कच्छ में शुरू हुए प्लेग का प्रकोप गुजरात के अन्य क्षेत्रों एवं सिंध तक फैला और करीब 10 वर्षों तक जारी रहा। 1828 में पंजाब में हिसार क्षेत्र में प्लेग के पूरे लक्षणों वाली एक बीमारी जिक्र मिलता है। 1836 में राजपूताना के मारवाड राज्य में प्लेग फैलने की सूचना मिलती है।

एक अन्य महामारी थी कोलेरा जिससे ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी परिचित नहीं थे। 19वीं शताब्दी के आरंभ में कोलेरा का प्रकोप फैला लेकिन यह केवल बंगाल तक सीमित रहा। हालांकि 1817–1821 में भारत में विस्तृत रूप से फैली कोलेरा महामारी से कंपनी को बड़ा झटका लगा। इसने कंपनी की सेवा और अधिकारियों को गंभीर रूप से प्रभावित किया, जिसे अन्यथा गरीब लोगों की बीमारी समझी जाती थी। कोलेरा का कोई प्रभावी उपचार इस समय उपलब्ध नहीं था।

मलेरिया भी सबसे भयानक एवं घातक बीमारियों में से एक था। 18वीं शताब्दी के अंत एवं 19वीं शताब्दी के आरंभ में ईस्ट इंडिया कंपनी ने पर्यावरण की दृष्टि से दुर्गम क्षेत्रों एवं राजनीतिक रूप से सीमांत क्षेत्रों पर अधिकार किया था मध्य भारत का वन क्षेत्र, पूर्व में राजमहल की पहाड़ियों और उससे आगे का क्षेत्र और मद्रास प्रेसिडेंसी एक त्रिभुजाकार क्षेत्र का निर्माण करते थे जो मलेरिया से त्रस्त था। औपनिवेशिक दस्तावेजों में चिकित्सा और स्थलाकृति से

संबंधित ग्रंथों में ज्वर को नियमित रूप से भारतीय पर्यावरण की एक विशेषता के रूप में पहचाना गया है। अंग्रेजा ने सबसे पहले दक्षिण की वनाच्छदित पहाड़ियों में इसका सामना किया था, संभवतः इसीलिए इसे मलेरिया नाम दिया गया जहाँ तमिल में 'मला' का अर्थ है पहाड़। इसे 'जंगल ज्वर' भी कहा जाता था। 19वीं शताब्दी के अंत तक इस बात की जानकारी नहीं थी कि मलेरिया किन कारणों से होता है और कैसे फैलता है। लोगों का यह विश्वास था कि मलेरिया जानवरों की लाशों एवं गिरे हुए पेड़-पत्तों के सड़ने से उत्पन्न हवा के द्वारा फैलने वाला एक जहर है। हालांकि इसे दलदली भूमि, बाढ़, दलदल, पेड़ों के नीचे घनी झाड़ियाँ और वनों के अस्वास्थ्यकर वातावरण से जोड़ा जाता था। कुछ चिकित्सकों ने पर्यवेक्षण एवं अनुभव के आधार पर उन क्षेत्रों की पहचान करने का प्रयास किया जहाँ मलेरिया का प्रकोप नियमित एवं काफी गंभीर था। इन क्षेत्रों में शामिल थे दलदली क्षेत्र जैसे तराई और उष्णकटिबंधीय जलवायु वाले क्षेत्र जैसे निम्न बंगाल, आसाम एवं उत्तर भारत के कुछ क्षेत्र जहाँ अंग्रेजों ने नहरों का निर्माण किया था। 1896-98 तक ही रोनाल्ड फस द्वारा मलेरिया फैलाने में एनोफिलीस मच्छर की भूमिका की खोज की जा सकी।

डेविड अर्सोल्ड में तर्क दिया है कि ब्रिटिश इन पहाड़ी क्षेत्रों को एक पारिस्थिकीय सीमा की तरह देखते थे। इन क्षेत्रों को स्थलाकृति, पेड़-पौधों, बीमारियों, जलवायु, जंगली जानवरों एवं जनजातियों के कारण मैदानी इलाकों से अलग देखा जाता था। यह वनक्षेत्र एवं साफ की गई भूमि, जनजातीय और कृषक समाज की बीच विरोधाभास में भी दिखाई पड़ता है। 18वीं शताब्दी के अंत से अंग्रेजों ने बंगाल की पश्चिमी सीमा पर स्थित जंगल महल, दक्कन में

खानदेश और मद्रास प्रेसिडेंसी में उत्तरी सरकारों के वनाच्छादित पहाड़ी क्षेत्रों पर दंडात्मक आक्रमण किए थे। अर्थोल्ड ने इस पारिस्थितिकीय क्षेत्र को ब्रिटिश आक्रमणों के विरुद्ध वनवासी जनजातियों के प्रतिरोध से संबद्ध किया है। उन्होंने तर्क दिया है कि भू भाग, पेड़-पौधे एवं बीमारियों वनवासी जनजातियों द्वारा अंग्रेजों का प्रतिरोध करने में लाभदायक सिद्ध हुए। संपूर्ण वातावरण असह्य और घातक केवल अंग्रेजों के लिए ही नहीं था बल्कि पहाड़ियों में जाने पर ज्वर मैदानी इलाकों के निवासियों को भी प्रभावित करता था। यह देखा गया कि पहाड़ी जनजातियों ने इस ज्वर के प्रति कुछ प्रतिरोधी क्षमता विकसित कर ली थी और इसे उन्होंने अपने फायदे के लिए इस्तेमाल किया। जब जून से फरवरी के मध्य वर्षा होती थी जंगली जानवरों एवं वनवासी जनजातियों के आक्रमण के खतरों के अतिरिक्त वातावरण ज्वर के कारण घातक बन जाता था। जब ब्रिटिश सेनाओं को मद्रास प्रेसिडेंसी के राम्पा एवं गुडेम के पहाड़ी क्षेत्रों में एक अभियान पर भेजा गया वे ज्वर की वजह से गंभीर बीमारी की चपेट में आ गए थे। अंग्रेजों को इन क्षेत्रों में आक्रमण अभियानों को भेजने पर पुनर्विचार करना पड़ता था ताकि कई लोगों के जीवन की क्षति होने से बचाया जा सके।

चेचक भी भारत में आम था। भारत के कुछ क्षेत्रों जैसे बंगाल और उत्तरी भारत में लोग इसे 'शीतला' नाम की एक देवी से जोड़ते थे जिसका अर्थ है 'वह चेचक होने के पश्चात पीड़ितों के ज्वर को ठंडा करती थी'। अतः उनकी पूजा और भय दोनों ही विद्यमान थे। बंगाल में 1769-1770 के अकाल के पश्चात चेचक महामारी से लाखों लोगों की मृत्यु हो गई। 1796 में एडवर्ड जेनर को

चेचक के टीके की खोज करने में सफलता मिली। 19वीं शताब्दी में चेचक का टीका सीमित रूप से भारत में भी उपलब्ध हुआ।

---

## 5.7 जल संसाधन

---

ब्रिटिश काल के पूर्व वर्षा द्वारा सिंचित कृषि के अतिरिक्त सिंचाई के परंपरागत तरीके जैसे कुएँ, तालाब, कुंड इत्यादि इस्तेमाल में लाए जाते थे। कुछ स्थानीय शक्तियों ने छोटी नहरों का निर्माण किया था। वे औपनिवेशिक काल में भी उपयोग में लाए जा रहे थे लेकिन अंग्रेजों ने पुरानी नहरों की मरम्मत की और नई नहरों का निर्माण बड़े पैमाने पर किया।

पंजाब के बारी दोआब में शाहजहाँ के शासनकाल में उसके अभियन्ता सलाहकार अली मर्दान खान ने रावी नदी के बाएँ तट पर 177 कि.मी. लंबी हँसली नहर का निर्माण किया था। सिख शासन के दौरान (1763–1849) इस नहर की एक शाखा का निर्माण अमृतसर के स्वर्ण मंदिर तक पानी ले जाने के लिए किया गया था। परवर्ती मुगल शासन के दौरान 1744 में 'शाह नहर' नामक एक छोटी नहर का निर्माण व्यास नदी के पश्चिमी तट पर गाँवों के साहूकारों के निजी प्रयासों से किया गया।

19वीं शताब्दी के आरंभिक दशकों में कंपनी राज के अंतर्गत सल्तनत एवं मुगल काल में बनाए गए नहर जो प्रयोग में थे या सूख गए थे उनकी मरम्मत एवं सुधार कार्य किए गए। इसमें शामिल थीं यमुना नदी पर बनी पूर्वी और पश्चिमी जमना नहर जैसा उन्हें ब्रिटिश दस्तावेजों में कहा गया है। पश्चिमी जमना नहर मूल रूप में 14वीं शताब्दी में फिरोज़ शाह तुगलक ने बनवाई थी। बाद में यह

उपयोग में नहीं रही परंतु अकबर के शासन के दौरान इसे पुनर्जीवित किया गया और शाहजहाँ के काल में अली मर्दान खान के द्वारा इसमें सुधार किया गया। 1817 में बंगाल अभियंता के. जी. आर. ब्लेन को इसे बहाल करने की जिम्मेदारी दी गई और 1820 तक उन्होंने इसे पूरा कर दिया। 1832-33 के अकाल के बाद इसका परिवर्धन एवं सुधार किया गया। नहर से आने वाले राजस्व ने सरकार को इसमें और अधिक सुधार करने के लिए प्रेरित किया। पूर्वी जमना नहर या दोआब नहर का निर्माण भी 18वीं शताब्दी के आरंभ में किया गया था लेकिन जल्द ही इसका उपयोग बंद हो गया। 1784 में इसे रोहिला सरदारों ने आंशिक रूप से पुनर्स्थापित किया। 1820 के दशक में अंग्रेजों ने इसे दोबारा बहाल करने के लिए कार्य आरंभ किया और इसे 1830 में खोल दिया गया।

रुहेलखंड/रोहिलखंड एवं देहरादून घाटी में स्थित कई बाँधों एवं नहरों के तंत्र में व्यापक सुधार किए गए। अंग्रेजों ने मेरठ के समीप पश्चिमी काली नदी से मुहम्मद अबू खान द्वारा बनाई गई 12 मील लंबी एक नहर को भी पुनर्जीवित किया। 1849 में लाहौर में ब्रिटिश अधिकार होने के बाद बारी दोआब में हँसली नहर में भी सुधार किया गया। इसे 1859 में खोला गया और 1861 से सिंचाई शुरू हुई।

दक्षिण में 1801 में जब तंजौर को अंग्रेजों को सौंपा गया तब सर्वाधिक प्रभावशाली देशीय संरचना कावेरी नदी पर बनाए गए विशाल एनीकट की मरम्मत एवं सुधार का कार्य किया गया। मूल संरचना का श्रेय सामान्यतः चोल राजाओं को दिया जाता है लेकिन विभिन्न विद्वान इन्हें दसरी से 11वीं शताब्दी

की परिधि में रखते हैं। 1834 में सर आर्थर कॉटन द्वारा इस एनीकट की मरम्मत एवं विस्तारीकरण किया गया। पालार एनीकट संरचना का निर्माण 1855 में किया गया। इसके अतिरिक्त गोदावरी, कृष्णा और पेन्नार एनीकट संरचनाएं 1844, 1852 एवं 1855 में आरंभ की गईं। गोदावरी और कृष्णा पर कॉटन ने ही विशाल बाँधों का निर्माण किया।

गंगा नहर विशुद्ध ब्रिटिश परियोजनाओं में प्रथम थी। इस विशाल परियोजना की संकल्पना 1836 में कर्नल जॉन कोल्विन ने की थी। सर थॉमस कॉटले ने इस परियोजना का परीक्षण किया लेकिन कुछ भौतिक रुकावटों के कारण निरूसाहित हो गए। लेकिन 1837–38 के गंभीर अकाल के बाद इसे पुनर्जीवित किया गया और 1843 में निर्माण आरंभ हुआ। यह विशाल नहर हरिद्वार से कानपुर तक 350 मील लंबी थी और प्रमुख धारा एवं शाखाओं को मिलाकर कुछ 650 मील लंबी थी। यह अपने समय की विश्व की सबसे लंबी नहर थी जिसे 1854 में खोला गया और 1857 में उपयोग में लाया गया। विकास की तरफ रुझान वाले गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी ने लोक निर्माण को समर्थन एवं सहयोग देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई और 1854 में लोक निर्माण विभाग (PWD) की भी स्थापना की। ये परियोजनाएँ न केवल लोगों के लिए वरदान बनी बल्कि ब्रिटिश सरकार को भी भारी वित्तीय लाभ हुआ।

## बोध प्रश्न 2

- 1) वर्णन करें कि कैसे 18वीं एवं 19वीं शताब्दियों के दौरान भारतीय उपमहाद्वीप में अकालों और महामारियों ने मानव जीवन का नाश किया।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

- 2) निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दे:

- क) भारत में राष्ट्रीय वन विभाग कब स्थापित किया गया?
- ख) भारत में वैज्ञानिक वानिकी लाने का श्रेय किसे जाता है?
- ग) 18वीं शताब्दी के अंत एवं 19वीं शताब्दी के आरंभ में पड़ने वाले अकालों को प्रशांत मध्यसागर में होने वाली किस जलवायु परिघटना से जोड़ा गया है?
- घ) अंग्रेजों द्वारा मरम्मत की गई किस नहर का निर्माण मूलतः फिरोजशाह तुगलक ने 14वीं शताब्दी में कराया था?
- ङ) विशुद्ध ब्रिटिश परियोजनाओं में कौन सी नहर सबसे प्रथम थी?

च) कावेरी पर बने 'वृहद एनीकट' को किसने बहाल और विस्तारीकरण किया था?

---

## 5.8 सारांश

---

प्रारंभिक आधुनिक काल के पर्यावरण का इतिहास उपमहाद्वीप में होने वाली राजनीतिक घटनाओं के विकास क्रम से अत्यंत प्रभावित था। 19वीं शताब्दी के आरंभ तक ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी ने दूसरे प्रतिस्पर्धियों को हटाकर स्वयं को सर्वोच्च शक्ति के रूप में स्थापित किया। जैसे-जैसे भारत के विभिन्न आंतरिक क्षेत्रों पर ब्रिटिश नियंत्रण स्थापित हुआ वे विशाल प्राकृतिक संसाधनों, विशेषकर वनों से परिचित हुए। आरंभ में जहाज निर्माण के लिए सागौन के वनों का दोहन किया गया परंतु शीघ्र ही कंपनी को विभिन्न प्रयोजनों के लिए लकड़ी की आवश्यकता पड़ी। लकड़ी की निरंतर आपूर्ति के लिए जनजातियों और अन्य निजी व्यक्तियों द्वारा वनों में प्रवेश को सीमित करते हुए उन्होंने वनों का परिनियमन करना आरंभ किया। संरक्षण की किसी चिंता के बगैर वनों के वाणिज्यिक दोहन ने वनावरण में भारी कमी को। कुछ बढ़ती चिंताओं के कारण 19वीं शताब्दी के मध्य से थोड़ा पहले कंपनी द्वारा वनों के संरक्षकों की नियुक्ति की गई और बाद में वैज्ञानिक वानिकी की भी शुरुआत की गई परंतु इसका भी वाणिज्यिक शोषण का एक दृष्टिकोण था। बाद में रेलवे के विकास ने लकड़ी को आपूर्ति लिए वनों पर भारी बोझ डाला। कंपनी की नीतियों ने जनजातियों के जीवन में भी हस्तक्षेप किया जिससे उनकी जीविका गंभीर रूप से प्रभावित हुई। वनों से भाज्य रूप से जुड़ा हुआ वन्यजीवन भी कृषि के विस्तार या विकास परियोजनाओं के द्वारा प्रतिकूल रूप से प्रभावित हुआ। लेकिन ब्रिटिश

अधिकारियों एवं भारतीय राजाओं के द्वारा शिकार ने तो जंगली जानवरों विशेषकर शेरों एवं बाघों की संख्या में तीव्र कमी की और कुछ को तो विलुप्त होने की कगार पर पहुँचा दिया। हमने राजस्थान में वनों एवं पेड़ों के संरक्षण की कुछ स्थानीय परंपराओं के बारे में जाना जिनमें पेड़ काटने पर दण्डात्मक प्रावधान भी शामिल थे।

इस काल में सूखे के कारण उपमहाद्वीप में अनेक अकाल पड़े लेकिन ब्रिटिश प्रशासन की कुव्यवस्था के कारण और भी बदतर बना दिया गया। अकाल के साथ-साथ विभिन्न महामारियां जैसे प्लेग और कोलेरा भी फैले जिनसे लाखों लोगों की मृत्यु हुई। दूसरी बीमारियां जैसे मलेरिया ने भारतीय लोगों के अतिरिक्त कंपनी के सैनिकों एवं अधिकारियों को भी प्रभावित किया। इसकी उत्पत्ति एवं उचित निदान की जानकारी के अभाव में बड़ी संख्या में वृद्धि हुई। ब्रिटिश निर्मित नहरों ने भी इसे फैलाने में योगदान दिया। कई जल परियोजनाएं जैसे पूर्वी एवं पश्चिमी यमुना नहर, गंगा नहर और कावेरी पर वृहद एनीकट की मरम्मत एवं निर्माण किया गया जो सिंचाई के परंपरागत साधनों के पूरक बने और ब्रिटिश सरकार को भी भारी वित्तीय लाभ हुआ। इस प्रकार प्रारंभिक आधुनिक काल में ब्रिटिश नीतियों के कारण उपमहाद्वीप में वनों एवं वन्य जीवन की क्षति हुई जो देश की स्वतंत्रता तक चलता रहा। लेकिन बढ़ती चिंताओं के कारण कुछ सुरक्षात्मक संस्थाओं की स्थापना हुई और अधिनियम भी बने।

---

## 5.9 शब्दावली

---

**एनीकट** : चिनाई किया गया एक बाँध जिसे सिंचाई के लिए नदी या धाराओं पर बनाया जाता है।

**वनस्पति उद्यान (Botanical Garden)** : पौधों की कई किस्मों के संग्रहण, कृषि, परीक्षण और प्रदर्शन के लिए समर्पित उद्यान।

**कोलेरा** : दूषित जल या भोजन ग्रहण करने से होने वाला आंतों का गंभीर संक्रमण।

**अल-नीनो-दक्षिणी प्रदोलन (ENSO)** : नियमित रूप से घटित होने वाला जलवायु का एक स्वरूप जिसमें मध्य और पूर्वी उष्णकटिबंधीय प्रशांत महासागर में जल के तापमान में परिवर्तन होते हैं। इसके तीन चरण हैं – अल-नीनो, अल-नीना और तटस्थ। जहाँ अल-नीनो गर्म चरण है वहीं अल-नीना ठंडा चरण है। अल-नीनो की घटनाओं के दौरान मध्य और पूर्वी उष्णकटिबंधीय प्रशांत महासागर

में समुद्र की सतह के तापमान के औसत से अधिक हो जाने के कारण समुद्र सतह गर्म हो जाती है। यह वातावरण को भी प्रभावित करता है। यह ENSO चक्र उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में वर्षा के वितरण को सीधे प्रभावित करता है। इंडोनेशिया और ऑस्ट्रेलिया में इससे वर्षा कम हो जाती है। हाल के अध्ययनों ने इसे भारतीय मॉनसून के साथ जोड़ा है और मॉनसून को कमजोर कर वर्षा की कमी में इसकी भूमिका पर बल दिया है।

#### अकाल

: फसल की विफलता और आपूर्ति के कुप्रबंधन के कारण खाद्य की भारी कमी जिसके परिणामस्वरूप भयंकर भूख, भूखमरी और मृत्यु होती है।

#### मलेरिया

: स्पोरोज़ोआन परजीवी के कारण होने वाला एक संक्रमक रोग जो

संवमित एनोफिलीज़ मच्छर क काटने से फैलता है। इसमें अचानक ठंड लगती है और तेज ज्वर आता है।

## प्लेग

: एक गंभीर और कभी-कभी जानलेवा साबित होने वाला संक्रमण जो येर्सिनिया पेस्टिस के कारण चूहों में होता है और मनुष्यों में यह अकस्मात संवमित जानवर को काटने वाले पिस्सू के काटने से फलता है। मानव इतिहास में प्लेग के कारण वैश्विक स्तर पर बहुत बड़ी संख्या में मृत्यु हुई हैं।

## वैज्ञानिक वानिकी

: वन और वृक्षारोपण प्रबंधन का विज्ञान। इसमें विविधतापूर्ण प्राकृतिक वनों को काटकर उनकी जगह एक विशेष प्रकार का पेड़ लगाये जाते हैं जिसे प्लांटेशन या रोपण कहते हैं। यह यूरोप में विकसित हुआ और भारत में 19वीं

शताब्दी के उत्तरार्ध में डॉ. डीट्रिश ब्रांडिस के द्वारा लाया गया। इसने औपनिवेशिक शासन के दौरान इन वनों के व्यावसायिक दोहन को सुगम बनाया। अब वैज्ञानिक इसकी आलोचना करते हैं क्योंकि इससे वनों को विविधता की कमी आई है और यह विविधता ही पारिस्थितिक संतुलन की विशेषता है।

**चेचक**

: एक अत्यधिक संक्रमक बीमारी जिसमें बुखार एवं कमजोरी होती है और त्वचा पर छाले हो जाते हैं जो निशान छोड़ते हैं।

**शिकार-क्रीड़ा (Sport-hunting)**

: शिकार का एक रूप जो आमतौर पर भोजन प्राप्त करने के लिए नहीं बल्कि आनंद प्राप्त करने के लिए किया जाता है। शिकारी बंदूक से बाघ, शेर, चीता, हाथी आदि जंगली जानवरों का शिकार

करते थे और मारे गए जानवरों की संख्या पर गर्व करते थे।

### झूम कृषि

: कृषि की एक पारंपरिक विधि जो अधिकतर वनवासी जनजातियों के मध्य प्रचलित होती है। इसमें भूमि के एक क्षेत्र में मौजूदा वनस्पति को काटकर एवं जलाकर साफ किया जाता है और कृषि योग्य बनाया जाता है।

---

### 5.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

---

#### बोध प्रश्न 1

- 1) आपको इस बात पर ज़ोर देना चाहिए कि किस प्रकार विभिन्न शक्तियों ने युद्धों के दौरान वनों को नष्ट किया और कैसे ईस्ट इंडिया कंपनी की नीतियां इसके लिए उत्तरदायी थीं जिसमें शामिल हैं – कृषि के विस्तार के लिए वनों की कटाई, जहाज निर्माण के लिए सागौन के पेड़ों की कटाई, नए क्षेत्रों में कंपनी के विस्तार के साथ-साथ छावनियों में विभिन्न भवन निर्माणों के लिए और विकास परियोजनाएं जैसे रेलवे आदि। आपको यह भी देखना चाहिए कि शिकार में जंगली जानवरों को कैसे खत्म किया। अधिक जानकारी के लिए उपखंड 5.2 और 5.3 देखें।
- 2) राजस्थान से उदाहरण दें। उपखण्ड 5.3 देखें।

## बोध प्रश्न 2

- 1) उपखण्डों 5.5 और 5.6 को देखते हुए अकालों और बीमारियों पर नज़र डालिए।
- 2) क) 1964, ख) डॉ. डीट्रिश ब्रांडिस, ग) अल-नीनो और दक्षिणी प्रदोलन, घ) पश्चिमी यमुना नहर, ङ) गंगा नहर, च) सर आर्थर कॉटन।

---

### 5.11 संदर्भ ग्रंथ

---

Arnold. D. (2012). 'Disease, Resistance, and India's Ecological Frontier, 1770–1947'. In M. Rangarajan and K. Sivaramakrishnan (Eds.) *India's Environmental History: From Ancient Times to the Colonial Period, A Reader*, Vol. II. India: Permanent Black.

Buckley, Robert B. (1880). *The Irrigation Works of India and their Financial Results*. London: Allen & Co.

Damodaran, V. (2015). 'The East India Company, Famine and Ecological Conditions in Eighteenth Century Bengal'. In V. Damodaran, A. Winterbottom and A. Lester (Eds.) *The East India Company and the Natural World*. Palgrave Macmillan.

Fisher. M. H. (2018). *An Environmental History of India: From Earliest Times to the Twenty-First Century*. Cambridge University Press.

Grove, R. (2012). 'Colonial Scientists and Ideas about Global Climatic Change and Teleconnections between 1770 and 1930'. In M. Rangarajan and K. Sivaramakrishnan (Eds.) *India's Environmental History: From Ancient Times to the Colonial Period, A Reader*, Vol. I. India: Permanent Black.

Prakash, Om (2007). 'Wildlife Destruction: A Legacy of the Colonial State'. *Proceedings of the Indian History Congress, 2006-2007*, Vol. 67, 692-702.

Purkait, P. et al. (2020). 'Major Famines in India during British Rule: A Referral Map'. *Anthropos India*, March: 61-68.

Rangarajan, M. (1994). 'Imperial agendas and India's forests: The early history of Indian forestry, 1800-1878'. *The Indian Economic and Social History Review*, 31(2), 148-167.

Sarvanan, V. (2008). 'Economic Exploitation of Forest Resources in South India during the Pre-Forest Act Colonial Era, 1793-1882'. *International Forestry Review*, Vol. 10 (1), 65-73.

Thapar, V. (2003). *Battling for Survival: India's Wilderness over Two Centuries*. New Delhi: Oxford University Press.